अक्षरवार्ता

भाषा, साहित्य और संस्कृति के लोकतंत्र का सहकार

शोध संवाद समूह, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ की प्रस्तुति

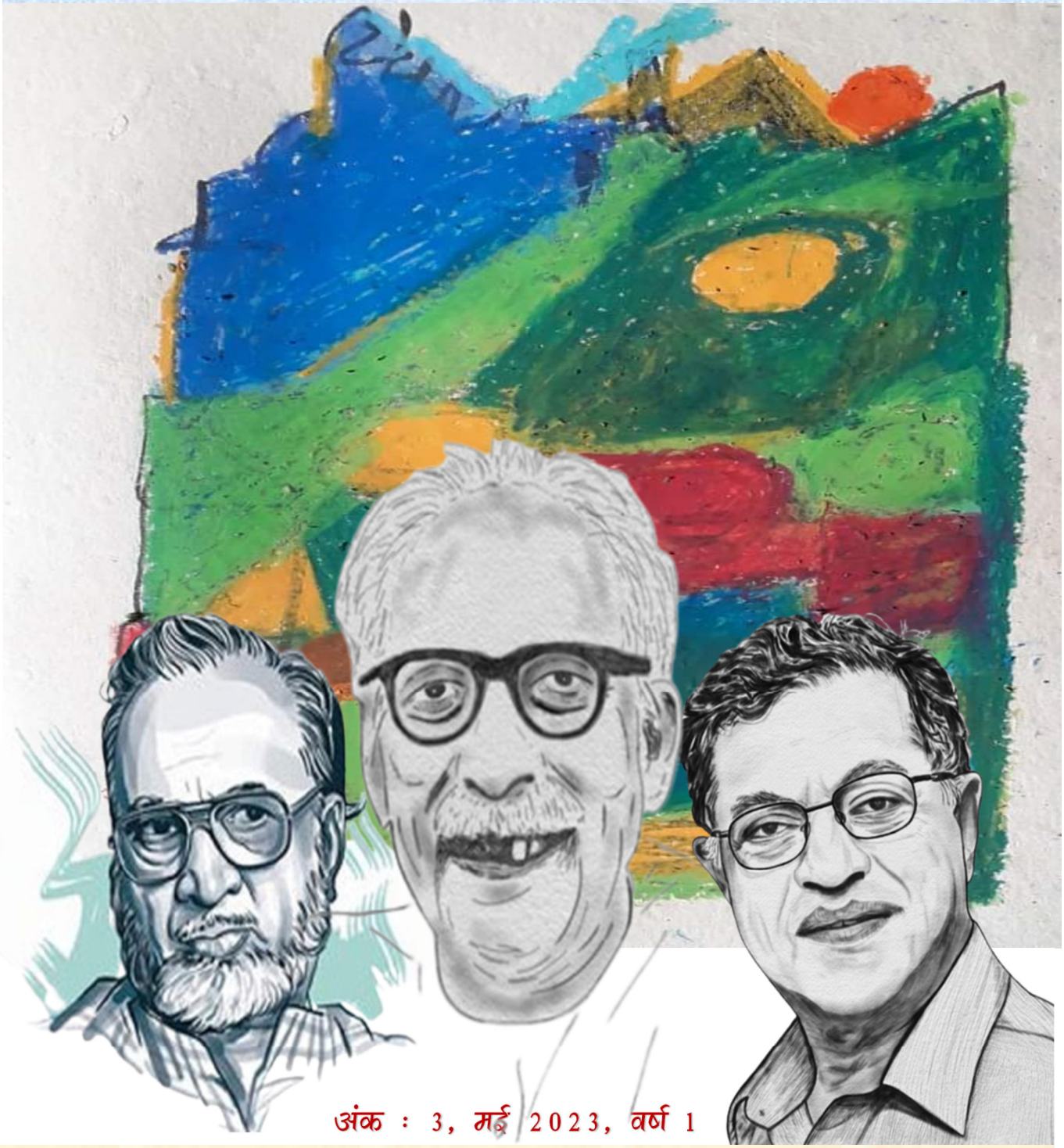

अंक : 3, मई 2023, वर्ष 1

भाषाई त्रिवेणी के साहित्यिक द्वीप (विजय तेंदुलकर, हजारीप्रसाद द्विवेदी और गिरीश कर्नाड)

अंक : 3, मई 2023, वर्ष 1

भाषाघर

(भाषा, साहित्य और संस्कृति के लोकतंत्र का सहकार)

❖ संरक्षक

प्रो. निरंजन सहाय

अध्यक्ष

हिन्दी और अन्य भारतीय भाषा विभाग

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ

सह संरक्षक

डॉ. अविनाश कुमार सिंह

डॉ. विजय कुमार रंजन

❖ संपादक

आरती तिवारी

प्रज्ञा पाण्डेय

अंजना भारती

❖ प्रबंध संपादक

उज्जवल कुमार सिंह

❖ **वित्तीय प्रबंधन**

वागीश त्रिपाठी

❖ **आवरण**

आदित्यांशु भरद्वाज

❖ **संशोधन समिति**

मनीष यादव

सौरभ त्रिपाठी

आकाश सिंह

धर्मेन्द्र कुमार

गजेन्द्र यादव

शिवम् चौबे

❖ **दस्तावेज प्रबंधन**

वरुणा देवी

❖ **समन्वयक समिति**

जनमेजय राम

हनुमान राम

सीता सुंदर सिंह

❖ **भित्ति सज्जा समिति**

रवि प्रकाश

आदित्य सिंह

रचना भेजने के लिए ईमेल पता :

bhashagharmgvkvp@gmail.com

फीडबैक के लिए ईमेल पता :

feedback.bhashaghar@gmail.com

सम्पादकीय पता

शोध संवाद समूह

हिन्दी और अन्य भारतीय भाषा विभाग

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

उत्तर प्रदेश, 221002

❖ **मार्गदर्शक मंडल**

प्रो. अनुराग कुमार

प्रो. राजमुनि

प्रो. रामाश्रय सिंह

प्रो. अनुकूल चंद राय

डॉ. प्रीति

डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह

भाषाघर में प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखकों के अपने हैं। उससे सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

विषय सूची

विषय सूची 3

सन्देश / प्रो. निरंजन सहाय 4

सम्पादकीय/ रचनात्मक फलक ..../ आरती तिवारी 6

कारवाँ बनता गया/ उज्जवल कुमार सिंह 10

हजारीप्रसाद द्विवेदी : स्त्री.../ रवि कुमार यादव 18

गिरीश कर्नाड की रंगमंचीय.../ प्रज्ञा पाण्डेय 20

हजारीप्रसाद द्विवेदी : चिन्तन.../ मनीष कुमार यादव 22

कोर्ट में कोतवाल/ शिवम चौबे 23

गिरीश कर्नाड का नाट्य ..../ बबिता मौर्या 26

हजारीप्रसाद द्विवेदी के ललित.../ वरुणा देवी 29

कविता

श्रेष्ठ हजारीप्रसाद द्विवेदी / मानसी कन्नौजिया..... 19

कारवाँ बनता गया

उज्जवल कुमार सिंह
शोध छात्र
हिन्दी और अन्य भारतीय भाषा विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ

भारतीय नाटक सिद्धांत अत्यंत समृद्ध और सुविकसित है। नाट्य सिद्धांत पर पुस्तकें भरतमुनि से बहुत पहले से उपयोग की जाती रही हैं। भरतमुनि के पूर्ववर्ती नाट्याचार्यों का कोई ग्रन्थ अभी तलक उपलब्ध नहीं है। कुछ किताबों में कुछ लोगों के उद्धरण मिले, जिनमें कुछ नाटकों के नाम का जिक्र है। लेकिन आज हमारे पास जो कुछ भी है वह काफी नहीं है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में नाटक से संबंधित विभिन्न विषयों का व्यापक वर्णन मिलता है, जो शायद किसी अन्य ग्रंथ में नहीं मिलता। यह पुस्तक कई शास्त्रों का आधार लेती है और विभिन्न कलाओं की चर्चा करती है। यह प्राचीन भारतीय ज्ञान का विशाल भण्डार है। यह पुस्तक बाद के सभी नाटककारों की अग्रदूत रही है।

अभिनवगुप्त नाट्यशास्त्र के व्याख्याकारों में सबसे प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने 'अभिनव-भारती' में 'नाट्यशास्त्र' की विस्तृत और विद्वतापूर्ण व्याख्या की। अभिनवगुप्त टीकाकार होते हुए भी रंगमंच के संबंध में स्वतंत्रता और मौलिकता के अपने सिद्धांतों को सामने लाते हैं। वस्तुत: अभिनवगुप्त का भारतीय रंगमंच सिद्धांत के विकास में विशेष स्थान है। धनंजय का 'दशरूपक' 10वीं शताब्दी का ग्रन्थ है। जैसा कि इसके नाम से ही पता चलता है, इसमें दस नाटकीय रूपों का वर्णन है। इस पुस्तक के अध्ययन से पता चलता है कि नानजी के समय तक नाटक की कल्पना अत्यन्त संकुचित और अवास्तविक हो चुकी थी। यह नाट्यशास्त्र के कुछ अध्यायों पर आधारित एक स्वतंत्र ग्रन्थ है, जिसका रंगमंच सिद्धांत के विकास के लिए विशेष महत्व है। यह छोटा ग्रंथ कारिका रूप में लिखा गया है और धनंजय के छोटे भाई धनिक ने अवलोक नामक भाष्य लिखा है। वस्तुतः 'अवलोक' को 'दशरूपक' का पूरक कहा जा सकता है।

बारहवीं शताब्दी में, रामचंद्र और गुणचंद्र नाम के दो जैन विद्वानों ने 'नाट्यदर्पण' नामक एक छोटी पुस्तक का सह-लेखन किया।

यह ग्रन्थ कारिका रूप में लिखा गया है तथा लेखक ने इसका दृष्टिकोण भी लिखा है। इस संबंध में 'नाट्यशास्त्र' और 'अभिनवभारती' का अच्छी तरह से उपयोग किया गया है और 'दशरूपक' जैसे ग्रंथों के विचारों की जगह-जगह आलोचना की गई है। किताब का भी अपना महत्व है। परवर्ती नाट्यशास्त्रियों में कविराज विश्वनाथ सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' के छठे परिच्छेद में नाट्य-सिद्धान्त का विवेचन किया है। यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों ने 'साहित्यदर्पण' को एक समान महत्त्व दिया है।

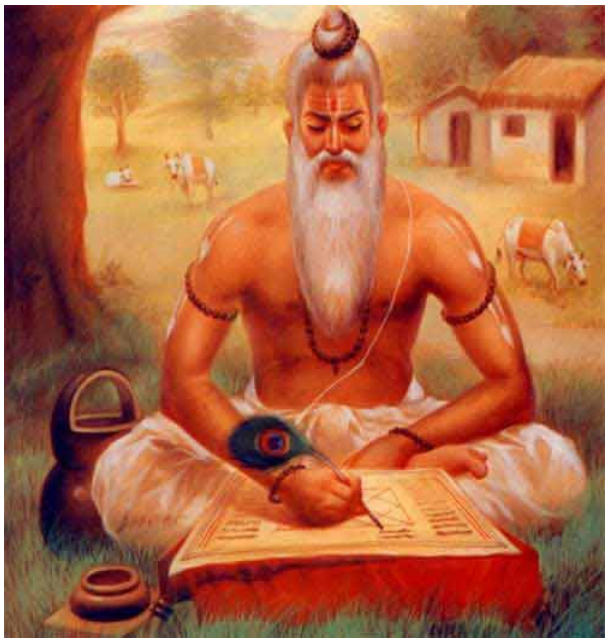

इसके अतिरिक्त संस्कृत के अनेक विद्वानों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय रंगमंच सिद्धांत के विकास में अमूल्य योगदान दिया है। वस्तुतः इस दृष्टि से हमारा प्राचीन संस्कृत साहित्य अत्यन्त समृद्ध है।

रीतिकाल के एक प्रतिष्ठित कवि और आचार्य केशवदास की रामचंद्रिका में नाटकीय तत्वों का इतना सुंदर और प्रभावी निर्वाह हुआ कि सदियाँ बीत गयीं बावजूद इसके उत्तर भारत के हिन्दी प्रदेशों में खेली जाने वाली रामलीलाओं में रामचंद्रिका के संवादों का ही प्रयोग होता है। तुलसी का रामचरितमानस हिन्दी प्रदेश के हृदय की अमूल्य निधि है पर नाटकीय भंगिमाओं के कारण प्रत्यक्ष लोक संवाद हेतु केशवदास के रामचन्द्रिका का ही उपयोग किया जाता है।

हिंदी नाटक सिद्धांत ग्रंथ बहुत बाद में बनाए गए। भारतेंदु की 'नाटक' नामक पुस्तक नाट्य सिद्धांत से संबंधित पहली पुस्तक है। नाटकों का लेखन रंगमंच सिद्धांत ग्रंथों के लेखन से पहले का है। इन नाटकों में मुख्य रूप से संस्कृत ग्रंथों में निहित सिद्धांतों को अपनाया गया। उनमें कहीं न कहीं अंग्रेजी और बांग्ला के प्रभाव से नाट्य सिद्धांत बदल गए। ये नाटक लेखक के नाटकीय सिद्धांतों को व्यक्त करते हैं। इसलिए लोग प्रसिद्ध नाटककारों के नाटक सिद्धांत का उनके नाटकों के संदर्भ में विश्लेषण करने का प्रयास करते हैं। अन्य विद्वानों ने भी अलग-अलग कार्यों में नाट्य-सिद्धांत की खोज की है, उनके सिद्धांतों के विकास को दिखाने का भी प्रयास किया जाएगा।

हिंदी में पहला नाटक विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में रास के रूप में लिखा गया था, लेकिन भारतेन्दुजी ने अपने 'नाटक' शीर्षक में 'देवमायाप्रपंच', 'प्रभावती' या 'रघुनंदन' को

मूल हिंदी नाटक माना है। परन्तु ये नाटक के नियमों का ठीक-ठीक पालन नहीं करते थे, और ये काव्य थे, इसलिए भारतेन्दुजी ने इन्हें नाटक के रूप में स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने पिता गिरिधर के 'नहूष' को हिंदी में पहला नाटक बताया था, लेकिन 'विद्यासुंदर के दूसरे संस्करण' की रचना में उन्होंने 'आनंद-रघुनंदन' को हिंदी का पहला नाटक माना। डॉ. गुलाबराय और बाबू ब्रजरत्न दास रीवा द्वारा 'आनंद-रघुनंदन' (रचनाकार - नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह) को हिंदी का पहला नाटक माना जाता है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का भी मानना है कि यह हिंदी का पहला नाटक है।

भारतेन्दु ने अपने स्तर से नाट्य-सिद्धांतों में नवीनता भरने का यथासम्भव प्रयास किया, परन्तु परम्परा से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सके । सम्भवतः वे अपने समय के सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के बाहरी कलेवर में इस प्रकार आबद्ध हो गये कि उन्हें दूसरी बातों का ध्यान ही नहीं रहा। किसी संस्थापक के सामने कई विवशताएँ रहती हैं, भारतेन्दुजी के भी सामने विवशताएँ थीं, इसी कारण उनमें आधुनिकता का पूरा समावेश नहीं हो सका। उनकी उपलब्धि यही है कि उन्होंने अपने समय की बदलती हुई लोक-रुचि पर ध्यान देकर प्राचीन नाट्यशास्त्रीय नियमों की जटिलता दूर कर दी और उन नियमों में आवश्यक परिवर्तन करके उन्हें अपने नाटकों के शिल्प के रूप में स्वीकार किया। भारतेन्दु के नाट्य में प्राचीन तथा नवीन परम्परा का न्यूनाधिक है। उनकी धारणा थी कि अतीत तथा वर्तमान के आलोक में ही भविष्य की रूपरेखा बड़ी की जा सकती है; इसीलिए हमारे नाटकों को न तो अपनी परम्परा से मुँह मोड़ लेना चाहिए और न नवीन मान्यताओं को ग्रहण करते समय किसी प्रकार की दुविधा होनी चाहिए।

भारतेन्दुजी ने परम्परागत संस्कृत-शैली को मुख्य रूप से अपनाया, परन्तु उसमें यूरोपीय नाट्य-कला का भी मिश्रण कर लिया। उन्होंने अपने आरम्भिक नाटकों में दोनों शैलियों का अलग-अलग प्रयोग किया और जिस कथानक के अनुकूल जो पद्धति जँची, उसे ही स्वीकार किया। रचना-शैली में उन्होंने मध्यम मार्ग का अवलम्बन किया। उन्होंने न अंग्रेजी नाटकों का अन्धानुकरण किया और न बांग्ला नाटकों के समान भारतीय शैली की सर्वथा उपेक्षा की। साथ ही, उन्होंने यह भी ध्यान में रखा कि संस्कृत नाट्य-शास्त्र में उनका नाट्य बुरी तरह उलझ न जाय। कहने का अभिप्राय यह है कि उन्होंने अपने को उन सभी बन्धनों से मुक्त रखा, जो नाटक में गतिरोध उत्पन्न करते हैं। उन्होंने अपने नाटकों का विषय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से लिया, अतः उनके नाटकों में शृंगार, शौर्य, करुणा आदि सभी विषयों का समावेश हुआ। भारतेन्दु ने अपनी दृष्टि बहुत व्यापक रखी और संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी, जहाँ कहीं उन्हें उपयुक्त वित्ती प्राप्त हुई एवं उसे निःसंकोच ग्रहण की।

जयशंकर प्रसाद को भारतीय और यूरोपीय दोनों नाट्य-सिद्धान्तों तथा शिल्पों की विशेषताओं का पूर्ण ज्ञान था। वे दोनों का

समन्वय करने के पक्षधर थे। फलस्वरूप वे एक ओर हिन्दी नाटकों के शिल्प की स्वतन्त्रता पर बल देते थे तथा मौलिकता का आग्रह करते थे और दूसरी ओर भारतेन्दु के ही समान नवीन प्रभावों को ग्रहण करके उसे पूर्ण बनाने की भी इच्छा रखते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने नाटकों के शिल्प का ऐसा विधान किया, जिसमें भारतीय तथा यूरोपीय दोनों नाट्य-सिद्धान्तों एवं शिल्पों की प्रधान विशिष्टताओं का समन्वय हुआ।

यूरोपीय नाट्यशास्त्री कथावस्तु में संघर्ष को अत्यधिक महत्व देते हैं। 'स्कन्दगुप्त' में प्रसादजी ने संघर्ष का कुशलता से समावेश किया है, अन्य नाटकों में भी संघर्ष तथा अन्तर्द्वन्द्व को उचित स्थान दिया है। घटनाओं में आरोह तथा अवरोह होता है, जिससे कथावस्तु की धारा कभी तीव्र गति से और कभी मन्द गति से प्रवाहित होती है। इस प्रकार, प्रसादजी ने कथावस्तु के निर्माण में भारतीय पद्धति से लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उद्योग के साथ पाश्चात्य् शैली से विरोध की चरम सीमा, निगति तथा समाप्ति का समन्वय किया है।

यदि भारत में आधुनिक नाटक की बात करें तो इसका सीधा संबंध पाश्चात्य् नाटक से है। पाश्चात्य् नाटक के प्रभाव से यहाँ आधुनिक नाटक की स्थापना हुई। यह समय-समय पर पश्चिमी नाट्य विधियों से प्रेरित होता है। पश्चिमी नाटकों ने भारत में विजित शासकों के रूप में प्रवेश किया। जब भारत एक ब्रिटिश उपनिवेश बन गया, तो औपनिवेशिक शक्तियों ने अपने शासन को दीर्घकालिक और व्यवस्थित रूप से लागू करने के लिए हमारी परंपराओं को हीन, रूढ़िवादी आदि घोषित कर दिया। इसलिए औपनिवेशिक शक्तियों ने न केवल भूमिगत उपनिवेश बनाया बल्कि भारतीयों के दिमाग को भी उपनिवेशित किया, हमारी अपनी परंपराओं के साथ एक सस्ता व्यापार शुरू किया। इस व्यापार में भारत की सांस्कृतिक हानि हुई और इसके कारण भारतीय चित्रकला का पतन हुआ। जैसा कि नेमिचन्द्र जैन लिखते हैं, 'भारत में रंगमंचीय शून्य की स्थिति मानकर 'सभ्य' अंग्रेज़ों द्वारा 'पिछड़े हुए' भारतीयों को नये सिरे से रंग संस्कृति में दीक्षित करने का या स्वयं भारतीयों द्वारा इस संस्कृति को हासिल करने का अभियान चल पड़ा।' इस तरह जो रंगमंच यहाँ विकसित हुआ वह मूल भारत के शास्त्रीय और पारम्परिक रंगमंच से पूर्णतया भिन्न है, वह पश्चिम की ही नकल था। भारतीय चिंतन और रंगकला का उद्देश्य मनुष्य की विभिन्न स्थितियों, अवस्थाओं और भावों के द्वारा आनंद और रस की सृष्टि है वहीं पश्चिमी नाटक का उद्देश्य जीवन के संघर्ष को दिखाना है और बिना किसी संघर्ष के नाटक की कल्पना ही नहीं जा सकती।

भारत में मुख्यता दो प्रकार के ही रंगमंच सक्रिय रहे हैं, एक जिसे संस्कृत रंगमंच कहा जाता है और दूसरा लोक रंगमंच जिसे जगदीशचन्द्र माथुर, परम्पराशील रंगमंच का नाम देते हैं। संस्कृत रंगमंच समय के अवसान के साथ धूमिल हो गया जिसके पीछे राजनीतिक

कारण थे किन्तु लोक रंगमंच आज तक अपनी अस्मिता को जीवित रखे हुए है। बुद्धिजीवियों ने इन दोनों नाट्यधाराओं पर पिछड़ेपन की मुहर लगाकर रंगमंचीय डिस्कोर्स से ही निष्कासित कर दिया।

इस प्रकार, जिस विरासत पर आधुनिक भारतीय रंगमंच का उदय हुआ, वह भारतीय सौंदर्यशास्त्र के बजाय पश्चिम से प्रेरित थी। यही कारण है कि आजादी के बाद भारत में रंग के प्रति जागरूक लोगों ने अपनी जड़ों की तलाश शुरू कर दी, क्योंकि जड़ें ही आपके सुंदर भवन का आधार हो सकती हैं। रतन थियम का मानना था कि "कुछ भी अपनी जड़ों के बिना नहीं बढ़ सकता।" इसीलिए जब भारतीय चित्रकार अपनी जड़ों को तलाशने की कोशिश करते हैं तो वे या तो नाटक के माध्यम से अपनी जड़ें तलाशते हैं, या वे लोक रंग की निरंतर परंपरा में अपनी पहचान देखते हैं। हबीब तनवीर का रंगमंच लोक स्पर्श के साथ अपनी नाटकीय प्रस्तुतियों का एक वसीयतनामा है। यह दुनिया उनके रंग जागरूकता की एक बानगी है। लोक की उपयोगिता को लेकर अनेक बुद्धिजीवियों ने अनेक प्रश्न उठाये हैं, पर हबीब तनवीर के चित्र सिद्ध करते हैं कि लोक पुराना नहीं है। यही बात इस देश को पश्चिमी देशों से अलग बनाती है, खासकर नाटक के संदर्भ में। नाटक का तोड़-मरोड़ वाला रुख बनावटी और थोपा हुआ लगता है, आधुनिक भारतीय नाटक से बचने के बजाय साक्षात्कार में अच्छा प्रदर्शन करना, भारतीय नाटक के नजरिए से, नाटक की वास्तविक नींव स्थापित करना है। हबीब तनवीर के अनुसार, 'जब तक हम अपनी परम्पराओं की ओर नहीं लौटेंगे और दुनिया को अपनी परम्पराओं की जानकारी नहीं देंगे, तब तक हम अभिव्यक्ति का वह स्वरूप विकसित नहीं कर सकेंगे जो आज के तकनीकी युग में ज़रूरी है, जहाँ नए किस्म की माँग बढ़ रही है। इसलिए जहाँ तक शैली, तकनीक और प्रस्तुतिकरण का प्रश्न है, हमें कुछ ऐसा चाहिए जो देशज हो, अपनी सम्पूर्णता में देशज हो। लेकिन साथ ही कथ्यात्मक रूप से विश्वसनीय, आधुनिक, समसामयिक हो, हमारे अपने युग का हो, इस स्पेस एज का हो।' इस तरह, आधुनिक विचारों का परंपरा में निहित होना पूरी तरह संभव है। परंपरा और आधुनिकता के बीच आपसी संवाद जरूरी है। 1960 के बाद, जब नाटककारों ने अपनी रंग पहचान के बारे में सोचना शुरू किया, तो इस दिशा में जो थिएटर हमारे सामने आए, उन्हें नये मुहावरे का रंगमंच कहा गया। सुरेश अवस्थी के शब्दों में, 'मोटे तौर पर हिन्दी में इस नये मुहावरे की शुरूआत 1954 में हबीब तनवीर द्वारा लिखित और निर्देशित 'आगरा बाज़ार' से होती है।' यथार्थवादी नाटक तत्वों को कई बार खारिज कर दिया गया है और नाटक को लोक-रंग की परंपरा में प्रस्तुत किया गया है। नाटक के प्रदर्शन के साथ, भारतीय रंगमंच जगत में नई उथल-पुथल मच गई और कुछ विद्वानों ने खड़े होकर इसे प्रदर्शनों की सूची के रूप में सूचीबद्ध करने से इनकार कर दिया। इसलिए इस नाटक के माध्यम से, हबीब ने भारतीय नाटक के लिए एक नई दुनिया खोली,

एक नया मुहावरा प्रदान किया और भारतीय नाटक की एक नई शैली में विकसित हुआ। 'आगरा बाज़ार' की पहल में भारतीय रंगमंच में जड़ों का उत्खनन आरम्भ हो गया जिसके फलस्वरूप आगरा बाज़ार, चरनदास चोर, घासीराम कोतवाल, नागमंडल, बरनम वन, हयवदन, मध्यम व्यायोग, चक्रव्यूह, मिट्टी की गाड़ी आदि नाटक हमारे सामने आते हैं जिन्होंने क्षेत्रीय धरातल के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की।

विजय तेंदुलकर समाज के सबसे निचले पायदान पर फँसे लोगों की जिंदगी को 'बॉटम ऑफ़ द पिरामिड' तक पहुँचाने के लिए जाने जाएंगे। समाज का सबसे निचला वर्ग वह वर्ग है जहाँ यह पिरामिड स्थित है, उसकी वजह से ऊपर वाले आराम से रहते हैं, लेकिन उसका एहसान भूल जाते हैं। विजय तेंदुलकर ने दर्द के उस हिस्से को याद दिलाने के लिए लिखा था।

उनके नाटक आदिम मानव प्रवृत्ति और कुंठाओं का वर्णन करते हैं। विजय तेंदुलकर महिलाओं के प्रति पुरुषों के हिंसक रवैये और उन्हें हर बार नग्न करने की पाश्विक प्रवृत्ति दिखाते हैं। वे जाति के ब्राह्मण हैं लेकिन अपने नाटकों में वे सबसे अधिक इसी जाति पर प्रहार करते हैं। वे मराठी में लिखते हैं। उनके नाटक 'शांता!, कोर्ट चालू आहे' (हिंदी संस्करण, 'खामोश! अदालत जारी है'), 'सखाराम बाइंडर', 'घासीराम कोतवाल', 'जात ही पूछो साधु की' और 'गिद्द' बहुत लोकप्रिय हुए। उन्होंने नाटकों की विषय वस्तु और मंच पर भी बार-बार परेशानी खड़ी की है।

'सखाराम बाइंडर' ऐसे आदमी की कहानी है, जो हर बार अलग स्त्री को घर ले आता है। लाई गयी स्त्री से क़रार है कि उसे खाना और छत मिलेगी। इसके एवज में सखाराम उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाएगा, उससे मारपीट करेगा, गलियाँ देगा और मन भर जाने पर उसे घर से निष्कासित कर देगा। नाटक में गालियों का भरपूर इस्तेमाल हुआ है। उन शब्दों का इस्तेमाल किया गया है, जो हम किसी ख़ास महफ़िल या अपने ज़ेहन में किसी से अत्यधिक नाराज़ होने पर भी इस्तेमाल नहीं करते हैं।

स्वाभाविक ही है कि विजय तेंदुलकर पर अश्लीलता का आरोप लगा। आख़िर समाज ख़ुद को ऐसे बेआबरू होते हुए कैसे देख लेता?

फिर चाहे वह हकीक़त ही क्यों न हो? बात मुंबई हाई कोर्ट भी पहुँची, जिसने विजय तेंदुलकर के खिलाफ मामला सिरे से ख़ारिज कर दिया। इसपर विजय तेंदुलकर ने खुद कहा था कि 'जब आप अच्छा-बुरा, सही-ग़लत जैसी चीज़ों में फँस जाते हैं, तब आपमें असली सच देखने की क्षमता खत्म हो जाती है।'

अपनी कहानियों में नग्नता परोसने के इल्ज़ाम की सफ़ाई में मंटो ने कहा था, "मैं वो लिखता हूँ जो समाज की हक़ीक़त है।" विजय तेंदुलकर ने भी यही किया था पर समाज तो हमेशा से ही खुद को सभ्य मानता रहा है और इस सभ्यता को उजागर करने वाले से बैर खाता रहा है।

'खामोश! अदालत जारी है' में एक ऐसी औरत का वर्णन है जिसके परिवार के एक सदस्य ने ही यौन शोषण किया है और बाद में उसका प्रोफ़ेसर भी यही करता है। उस औरत की कोख में एक बच्चा है, जिसे समाज के तथाकथित सभ्य लोग नाजायज़ कहकर भ्रूण-हत्या करवाने का आदेश देते हैं। समाज से एकदम अलग पड़ी हुई वह स्त्री अपने खिलाफ इस अन्याय से आखिरी तक लड़ती है। इस नाटक के लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगा सकते है कि इसका 6000 बार से ज्यादा मंचन हुआ है। भारतीय रंग इतिहास (नाट्य इतिहास) में तो ऐसे नाटक बहुत कम मिलते हैं जिनका इतना ज्यादा मंचन किया गया हो। इसकी अनुवादक सरोजिनी वर्मा कहती हैं, 'पहली बार विजय तेंदुलकर ने इस नाटक के ज़रिए परंपरागत नाटक को प्रयोगधर्मी रंगमंच के साथ जोड़कर दर्शकों को सीधे पकड़ लिया।' 'सखाराम बाइंडर' के अनुवाद के दौरान उसमें इस्तेमाल की हुई भाषा शैली के निकट तक टिके रहने में सरोजिनी वर्मा को यकीनन काफ़ी मशक्कत करनी पड़ी होगी और चुनिंदा लफ़्ज़ों के इस्तेमाल में उन्होंने हिम्मत भी दिखाई है।

अपने ऐतिहासिक नाटक 'घासीराम कोतवाल' को आज के समाज से जोड़ते हुए विजय तेंदुलकर ने कहा था, 'मेरी निगाह में घासीराम कोतवाल एक विशिष्ट सामाजिक स्थिति की ओर संकेत करता है। वह स्थिति न पुरानी है और न नई। न वह किसी भौगोलिक सीमा-रेखा में बंधी है, न समय से ही। वह स्थल-कालातीत है, इसलिए 'घासीराम' और 'नाना फड़नवीस' भी स्थल-कालातीत हैं। सामाजिक स्थितियाँ उन्हें जन्म देती हैं, देती रहेंगी। किसी भी युग का नाटककार उनसे अछूता नहीं रह पाएगा।'

विजय तेंदुलकर की लेखन शैली ने बॉलीवुड को भी आश्चर्यचकित किया। आजकल के स्टार्ट अप्स में 'क्राउड फंडिंग' के विचार को सबसे पहले उन्होंने फिल्म 'मंथन' में दिखाया था, जहाँ कुछ महिलाएँ अपनी पूँजी लगाकर दूध की सहकारी समिति चलाते हुए संघर्ष करती हैं। (कमोबेश उनकी यह कहानी लिज्जत पापड़ की स्थापना करने वाली महिलाओं से मिलती जुलती प्रतीत होती है।) श्याम बेनेगल की इस फ़िल्म की पटकथा, उन्होंने कैफ़ी आज़मी के साथ मिलकर लिखी थी। अपराध जगत और एक पुलिस अफ़सर के द्वंद्व पर बॉलीवुड की सबसे सशक्त फ़िल्म 'अर्धसत्य' और ग़रीब किसानों की स्त्रियों के शोषण पर बनी 'आक्रोश' जैसी फ़िल्मों की पटकथा उन्होंने ही लिखी थी।

विजय तेंदुलकर के नाटकों और फ़िल्मों की पटकथा में एक बात समानांतर चलती है। वह यह कि वे अपने नाटकों में दिखती समाज की विसंगतियों और मानसिक बदहाली का हल नहीं बताते, समस्या का लेखांकन भर करके छोड़ देते हैं। यह विजय तेंदुलकर की निर्ममता नहीं है, उनकी ईमानदारी है। आख़िर इंसान की कुंठाओं और कामनाओं का इलाज समाज या सरकार के पास नहीं है, उसे ख़ुद ही अपना उपचार करना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. भारतीय नाट्य सिद्धांत : उद्भव और विकास, डॉ. रामजी पाण्डेय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
2. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, दशरथ ओझा, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली
3. हिन्दी गद्य : स्वरूप, इतिहास एवं चयनित रचनाएँ, प्रो. निरंजन सहाय एवं डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
4. परम्पराशील नाट्य, श्रीजगदीशचंद्र माथुर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
5. हिन्दी नाट्य विमर्श, गुलाबराय, (https://archive.org/download/in.ernet.dli.2015.342772)
6. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद्, इलाहबाद विश्वविद्यालय https://archive.org/download/in.ernet.dli.2015.430042
7. हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष, गिरीश रस्तोगी, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
8. https://www.apnimaati.com/2021/07/blog-post_21.html?m=1
9. https://www.satyagrah.com/society/vijay-tendulkar-life-plays/

■